दर्पहः दर्पदः

'विष्णु सहस्रनाम' महान रचना है। इसम अपने अंतिम पलों में भीष्म पितामह द्वारा धर्मराज को दिया गया संदेश है। इन हज़ार नामों में से दो नाम अद्‌भुत हैं।

दर्पहः – दर्प का हरण करने वाला तथा दर्पदः – दर्प को देने वाला। विष्णुसहस्र नाम के प्रत्येक नाम में विष्णुतत्त्व और विष्णु गुण व्याप्त है।

विष्णु का अर्थ है – सर्वत्र फैला हुआ। आत्मा ही सर्वत्र फैला हुआ है। हर आत्मज्ञानी एक विष्णु है, उसी तरह हर आत्मज्ञानी सहस्र फणों वाला साँप भी है।

आत्मज्ञानी वही है जिसने सहस्रदल कमल को पा लिया है। सहस्र का अर्थ यहाँ एक हज़ार नहीं बल्कि अनंत है। एक आत्मज्ञानी के अनन्त गुणों में सिर्फ़ एक हज़ार गुणों के बारे में भीष्म पितामह ने विशेषरूप से बताया। विष्णु सहस्रनामका हर नाम अद्‌भुत है। हर पिरामिड ध्यानी को इस ग्रंथ को अवश्य पढ़ना चाहिए।

आत्मज्ञान जब होता है तब दर्प स्वयं खो जाता है। यही दर्पहः है। जिसमें आत्मज्ञान नहीं है, वह दूसरे आत्मज्ञानियों को देख नहीं सकता। अतः अपने को महान समझता है और अहंकार में पड़ जाता है। परंतु जिस प्रकार दिन के समय तारे नहीं दिखाई पड़ते पर रात होते ही प्रकाशित होने लगते हैं, वैसे ही एक अज्ञानी जब आत्मज्ञानी हो जाता है तब उसे बाकी आत्मज्ञानी भी चमकते हुए दिखाई देने लगते हैं। तब उसका अधूरा ज्ञान पूरी तरह दूर हो जाता है, वह सत्य को समझ लेता है।

यही दर्पहः कहलाता है।

भीष्म पितामह ने दर्पदः का भी प्रयोग किया है दर्प को देने वाला। आत्मज्ञानी आत्मबल से इस सच्चाई को विनम्रतापूर्वक प्रकट करता है कि मैंने प्राप्त किया। मैं समझ गया। मैं भी जान गया हूँ। लेकिन जो आत्मज्ञानी नहीं हैं वह आत्मबल को घमण्ड समझता है। मगर वह अहंकार नहीं है। यही दर्पदः शब्द का अर्थ है।

सभी पिरामिड मास्टर्स को घमण्ड नहीं है और है भी। इस विषय में भीष्माचार्य की बात समझ कर ही हम बात को समझ सके है।